अङ्क-२५
जनवरी-जून २०१५

वेदविद्या
ISSN-२२३०-८९६२

अथर्ववेद में मणिबन्धन-प्रयोग

डॉ. कैलाशनाथ तिवारी

आदिकाल से ही मणियाँ शोभा, अलङ्कार तथा प्रसन्नता के लिए विविध रूपों में धारण की जाती रही हैं। केवल जन सामान्य में ही नहीं अपितु विद्वानों में भी यह विश्वास प्रचलित रहा है कि मणियों में दिव्यशक्ति होती है और उनको विधिवत् धारण करने से लौकिक जीवन के अभ्युदय कारक विविध फल सहज में ही प्राप्त हो सकते हैं। केवल यही नहीं जो असाध्य रोग सामान्य उपचारों से ठीक नहीं हो सकते हैं, उनको मन्त्रसिद्ध मणियों के प्रयोग से ठीक किया जा सकता है। आयुर्वेद की दृष्टि से मणिबन्धन द्वारा उपचार-प्रक्रिया में मणि एक प्रकार के रक्षाकरण्ड की भाँति है,जो विधिवत् धारण किए जाने पर आरोग्य, शान्ति, उत्साह व प्रसन्नता आदि की वृद्धि के साथ ही विभिन्न रोगों तथा विषादि को दूर कर अनाक्रमण या पूर्व प्रतिरक्षण प्रभाव उत्पन्न करती है। इसीलिए अथर्ववेद में मणियों को प्रभावशाली दिव्यकवच बताया गया है। '**ये स्रात्त्यं मणिं जना वर्माणि कृण्वते । सूर्यं इव दिवमारुह्य विकृत्या बाधते वशी ॥**[१] अर्थात् जो लोग इस मणिमय कवच को धारण करते हैं। वे सूर्य के समान तेजस्वी होकर अपने ऊपर किये हुए घातक प्रयोगों को हटा देते हैं। अन्यत्र कहा गया है '**अस्मै मणिं वर्मं बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः। प्रजापतिः परमेष्ठी विराड् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे॥**[२] अर्थात् सब देव और ऋषि ने अपनी शक्तियों से इस मणिरूपी कवच को मेरे शरीर पर बाँधा। इससे सिद्ध होता है कि मणिरूपी कवच बाँधने से शरीर में विभिन्न दैवीशक्तियों का प्रभाव उत्पन्न हो जाता है जिससे विविध रोगों व पीड़ाओं का शमन होता है तथा सर्वविध रक्षा और कल्याण होकर विविध कामनाओं की पूर्ति होती है ।

मणियाँ अनेक प्रकार से धारण की जाती हैं। यथा अँगुलीयक (अँगूठी), भुजा, गला, सिर पर (ताबीज के रूप में), मणिबन्ध (कलाई) पर (कङ्कण के रूप में) तथा कमर पर (नीवि-ग्रन्थि के रूप में) इनको पहनने का प्रचलन है। इस कार्य हेतु विभिन्न पार्थिव, जैविक तथा वानस्पतिक मूल से प्राप्त स्वाभाविक एवं कृत्रिम मणियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। यद्यपि कौटिल्यादि ने मणियाँ-खनिज,

---

[१] अथर्ववेद ८.५.७
[२] अथर्ववेद ८.५.१०

सामुद्रिक प्राणिज तथा वानस्पतिक चार प्रकार की बतायी हैं, परन्तु सामुद्रिक मणियों यथा मूंगा (Coral), मोती (Pearl) आदि का जैविक मणियों में ही अन्तर्भाव हो जाता है। यहाँ आयुर्विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण कतिपय अथर्ववेदोक्त मणियों का संक्षेप में वर्णन किया जाता है।

खनिज मणियाँ वे होती हैं जो पर्वतों पर, भू अथवा भूगर्भ में उत्पन्न अयस्कों से बनती हैं। सोना, चांदी, तांबा व लोहादि विभिन्न धातुओं से निर्मित मणियाँ एवं माणिक्य, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम तथा वैडूर्य आदि रत्न इसी के अन्तर्गत परिगणित होते हैं।

अंजनमणि - एक खनिज पदार्थ है जो पर्वतों पर उत्पन्न होता है। यह नेत्रों के लिए हितकारी तथा जीवन दायक औषधि है।[३] अथर्ववेद के एक मन्त्र में अंजन के गुण बताते हुये कहा गया है- 'उतासि॑ परि॒पाण॑ यातु॒जम्भ॑नमांजन उ॒तामृत॑स्यत्वं वे॒त्थाथो॑ असिजीव॒भोज॑न॒मथो॑ हरित भेष॒जम्।[४] अर्थात् हे अंजन तू रक्षक है, विविध यातनाओं-पीड़ाओं का नाश करने वाला है। अमृत-उत्तम स्वास्थ को प्राप्त कराने वाला, क्षयादि रोगों को हटाकर मनुष्यों को सुखोपभोग में सक्षम बनाने वाला और हरित-कमला-पीलिया रोग का नाशक है। अन्यत्र कथन है- '' यस्या॑ जन प्र॒सर्प॒स्यंग॒मगं॒ परु॑ष्परुः।तत॒ो यक्ष्मं॒ विबा॑धस उ॒ग्रो म॑ध्यम॒षीरि॑व।[५] अर्थात् हे अंजन! तू जिस मनुष्य के अंग तथा जोड़ जोड़ में पहुँच जाता है उस मनुष्य के शरीर से रोगों को उसी प्रकार ताड़ित कर निकाल देता है जैसे मध्य (अन्तरिक्ष) स्थानीय वायु मेघों को ताड़ित कर छिन्न भिन्न कर देती है। इस अंजन मणि के प्रयोग से शपथ या शाप, कृत्या, शोक, जड़ता, असद्विचार, दुःस्वप्न जन्य फल, दुष्कृत्य, मलिनता, दूषित चितवृत्ति तथा क्रूर दृष्टि जन्य प्रभाव नहीं होते हैं।[६] तकमा,बलास तथा सर्प-सर्पविष ये तीनों अंजन के दास हैं।[७] अर्थात् इनकी चिकित्सा अंजन से की जा सकती है। वैद्यक ग्रन्थों में भी अंजन को अमृत, स्वादु, नेत्रों के लिये हितकारी, कशाय, स्निग्धग्राही, छर्दि तथा विष का नाशक कहा गया है।[८] यह अंजन मणि मनुष्यों के साथ साथ पशुओं के लिए भी लाभकारी बतायी गयी है।[९] अथर्ववेदीय परम्परा के कौशिक सूत्र ने दीर्घायु की कामना वाले बालक को अंजन

---

[३] अथर्ववेद – ४.९.१

[४] अथर्ववेद – ४.९.३

[५] अथर्ववेद – ४.९.४

[६] अथर्ववेद – ४.९.५ व ६

[७] अथर्ववेद – ४.९.८

[८] Srotonjanam Smritam Swadu Chachhusya Kafa Pittanut Kashayam Lekhanam Snigdham Graahicchhardi Vishaapaham (Bhava Prakash Nighantu).

[९] अथर्ववेद – ४.९.२

मणि बांधने में इस सूक्त (अथर्व ४/९) का विनियोग करते हुये 'एहि जीवम् इत्यांजनमणिं बध्नाति' लिखा है।[१०] शान्तिकल्प ने भी ऐरावती शान्ति कर्म में अंजन मणि का विधान किया है।[११]

कृष्णलमणि भी एकखनिज मणि है, दीर्घायुष्य की कामना से इसको हिरण्य मणि के साथ बंधने का विधान किया गया है।[१२] परन्तु इसके स्वरूप के विषय में कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। यह कृष्णलमणि संभवतः इन्द्रनील मणि (नीलम) है। जो उत्तम स्वास्थ्य, आयु की वृद्धि तथा वर्चस्व प्राप्ति के लिए स्वर्ण में जड़वा कर धारण किया जाता है। ज्योतिषशास्त्र में नीलम को (शनि ग्रह से सम्बन्धित होने के कारण) शनिग्रहजन्य विविध पीड़ाओं का शामक, दीर्घायु ,निर्णय शक्ति, आत्मविश्वास तथा विजय देने वाला रत्न माना जाता है। आयुर्वेद मे नीलम के गुण धर्म बताते हुए कहा गया है 'श्वासकासहरं वृष्यं त्रिदोषघ्नं सुदीपनम्।विषमज्वरदुर्नाम पापघ्नं नीलमीरितम्।'[१३] अर्थात् नीलम श्वास, कास, विषमज्वर, पाप तथा त्रिदोष का नाशक, दीपक एवं वृश्य होता है। अतः इसके धारण करने से दीर्घायु, आरोग्य, तेज और वर्चस् प्राप्त होना सम्भव है ।

त्रिवृतमणि इसे हिरण्य (सोना) के साथ चाँदी तथा अयस के तारों को मिलाकर बनाया जाता है। इसे अथर्ववेद में त्रिवृत्त कहा गया है। यह आयु की वृद्धि करने वाला बताया गया है।[१४] आचार्य सायण ने कौ० सू० ५८/१० तथा नक्षत्र कल्प १९/५ के आधार पर 'तथा अनेन सूक्तेन उपनयनान्तरं आयुष्कामस्य माणवकस्य सुवर्णरजतलोहमयानि त्रीणि षकलान्येकत्र कृत्वा नवषालाकं मणिं त्रिवृतं कृत्वा संपात्याभिमन्त्र्य बध्नाति इति केशवः तथा..... वैष्णव्याख्यां महाशान्तौ त्रिवृन्मणि बन्धनेऽपि अस्य सूक्तस्य विनियोग' लिखकर त्रिवृत मणि धारण करने का निर्देश किया है।[१५] आचार्य केशवदेव शास्त्री इसकी विधि बताते हुए लिखते हैं 'जब रविवार को कृत्तिका या पुष्य नक्षत्र अथवा गुरुवार में पुष्य नक्षत्र हो, पूर्णा तिथियाँ हों तब सोना, चाँदी, लोहे की अर्थात् तीनों के ही तारों के निर्मित मणि (अंगूठी) अभिमन्त्रित होम तथा सूर्य उपस्थान पूर्वक गोदधि, मधु,घृत में बिठा कर धारण करें यह आकाशीय,पातालीय तथा पार्थिवीय सुरक्षा तथा उसकी लोकप्राप्ति में सहायक होती है।[१६]

---

[१०] कौशिकसूत्र – ७.९

[११] शान्तिकल्प – १९.८

[१२] अथर्ववेद – १.३५ तथा इस सूक्त का सायण कृत विनियोग ।

[१३] रसतंत्रसार, सिद्ध प्रयोग संग्रह (कालेडा)

[१४] अथर्ववेद – ५.२५.६, ७.९.१० तथा १९.२७.३ – ९ भी द्रष्टव्य है ।

[१५] अथर्ववेद ५.२८ तथा १९.२७ का सायण कृत विनियोग ।

[१६] आचार्य केशव देवशास्त्री, अथर्व संहिता विधान, श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नईदिल्ली १९८८-८९, पृ० १३२

शरमणि लोहे की बनी होती थी। शर (बाण) का अग्र भाग होने के कारण इसे शरमणि कहा गया है। बन्ध्यात्व दोष निवारण तथा पुंसवन हेतु इसका प्रयोग किया जाता था । अथर्ववेद में कहा गया है। कि हे स्त्री! जैसे तरकस में बाण आता है। उसी प्रकार तेरे गर्भाशय में पुरुष गर्भ आवे।[१७] कौशिक सूत्र ३५/१-३ के आधार पर सायण ने अथर्व ३/२३ का विनियोग पुंसवन कर्म में गर्भिणी स्त्री के सिर पर बाण मणि बाँधने में किया है।[१८] इस शर मणि का स्वरूप क्या था इस पर कोई स्पष्ट विवरण नहीं मिलता है। सम्भवतः बाण का अग्रभाग (फल) शर मणि रहा होगा जिसे गर्भिणी के सिर पर किसी वस्त्र आदि में रखकर बाँधा जाता होगा।

हिरण्य मणि अर्थात् स्वर्ण निर्मित मणि एक खनिज मणि है जो अथर्ववेद मे दीर्घायु, बल तथा वर्चस् कारक वर्णित है।[१९] इसके गुणों का वर्णन करते हुए एक मन्त्र में कहा गया है ''नैनं रक्षाँसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत् यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः।[२०] अर्थात् जो सुवर्ण मणि को धारण करता है, उसको राक्षस और पिशाच बाधा नहीं करते हैं। वह मनुष्यों में दीर्घायु प्राप्त करता है। कौ०सू० ५२/२०-२१ तथा शान्तिकल्प १९/५ के आधार पर आचार्य सायण ने आयुष्कामः हिरण्य मणिं युग्म कृष्णलं संपात्य अभिमन्त्र्य स्थाली पाकं च संपात्य अभिमन्त्र्य तन्मणिबन्धनं तदोदनप्राषनं च अनेनैव सूक्तेन कुर्यात्.... तथा' आदित्याख्यां महाशान्तौ युग्म कृष्णलमणि बंधनेऽपि एतत सूक्तं ' लिख कर हिरण्यमणि धारण करने का निर्देश किया है।[२१] आयुर्वेद में भी स्वर्ण को बल, वीर्य, बुद्धि ओज तथा यौवन की वृद्धि करने वाला दीर्घायु कारक सर्वश्रेष्ठ रसायन माना गया है।श्रीमद् वाग्भट्टाचार्य कृत रस रत्नसमुच्चय में सुवर्ण के गुण 'स्निग्धं मेध्यं विषगदहरं बृहणंवृश्यमगजं, यक्षोन्मादप्रषमन परं देहरोगप्रमाथी। मेधा बुद्धि स्मृतिसुखकरं सर्वदोषामयघ्नं रुच्यं दीप्तिप्रषमितरुजं स्वादु पाकं सुवर्णम'।।[२२] वर्णित हैं। ये सभी गुण वेदोक्त हिरण्य मणि जन्य प्रभाव की पुष्टि करते हैं। आज भी केवल स्वर्ण अथवा स्वर्ण में विविध (हीरा, पन्ना, माणिक्य तथा पुखराज आदि) रत्न जड़वा कर विविध ग्रहजन्य पीडाओं के शमन के लिए धारण करने का प्रचलन है।

---

[१७] आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान बाण इवेषुधिम० अथर्व वेद ३/२३/२

[१८] अथर्ववेद ३.२३ पर सायण् कृत विनियोग ।

[१९] अथर्ववेद – १.३५.१

[२०] अथर्ववेद – १.३५.२

[२१] अथर्ववेद – १.३५ पर सायण कृत विनियोग ।

[२२] रस रत्न समुच्चय (५.१०), चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणासी, १९३९

जैविक मणियॉ वे कहलाती है जो किसी जीवित या मृत पशु के किसी अंग या उपांग से बनाई जाती हैं। ये सभी मणियॉ भी सुवर्णादि में जड़वा कर अथवा सुवर्णादि के तारों में पिरोकर अथवा किसी धागा आदि में बॉध कर धारण की जाती हैं।

अस्तृतमणि एक जैविक मणि है। अस्तृत मणि ओज, वर्चस, बल, आयु तथा रक्षाके लिये धारण की जाती है।[२३] अथर्व वेद के अनुसार इसके धारण करने से नेत्र शक्ति, प्राण शक्ति तथा बल की वृद्वि होती है।[२४] स्वामी ब्रह्ममुनि ने यहां पर 'अस्त्रित' पाठ मान कर अस्त्रित का अर्थ 'व्याघ्रन किया है,[२५] तथा समर्थन में अथर्ववेद का ही एक मन्त्र उद्वृत किया है- ''अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते। व्याघ्रः शत्रूनभितिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभिरक्षतु।। ' '(अथर्व १९/४६/५) अर्थात् इस व्याघ्रनख शस्त्ररूप मणि में एक सौ वीर्य-बल हैं। इसमें सहस्त्रों प्राण जीवन शक्तियाँ हैं। अतः इस व्याघ्रनख शस्त्र रूप मणि को धारण करके तू व्याघ्र जैसा होकर सब शत्रुओं पर आक्रमण कर, जो तेरे साथ लडना चाहे वह परास्त हो। यह अस्तृत तेरी रक्षा करे। प्रस्तुत मन्त्र की व्याख्या में आचार्य सायण ने भी ' एवं वीर्यप्राणोपेतो मणिस्त्वं व्याघ्रः' लिखा है।[२६] इससे यह प्रतीत होता है कि यह मणि सम्भवतः शेर का नाखून है। क्यों कि आज भी कमजोर प्रकृति के तथा शीघ्र भयभीत होने वाले मनुष्यों किंवा बालकों के गले में व्याघ्र नख (सिंह का नाखून) पहनाने की परम्परा भारत वर्ष में है। आचार्य सायण ने भी बल प्राप्ति के लिए मरूद्गणी महाशान्ति कर्म में अस्तृत नामक मणि को अभिमंत्रित कर बॉधने का निर्देश किया है।[२७]

कृष्णमृगचर्ममणि काले हरिण की खाल तथा उसके बालों से बनाई जाती थी। वाजीकरण चिकित्सा में लिंग वर्धन हेतु अर्कमणि के साथ ही कृष्णमृगचर्म मणि का प्रयोग विहित है। अथर्ववेद में कहा गया है यावदङ्गीनं पारस्वतं हास्तिनं गार्दभं च यत। यावदश्वस्य वाजिन स्तावत् ते वर्धतां पसः।।[२८] यहॉ सायण ने अपने भाष्य में ' पारस्वतः एतत्संज्ञस्य मृग विशेषस्य पसः पुव्य´ जनं यावत् यत्परिमाणं' लिख कर इसको स्पष्ट किया है, तथा इसका विनियोग करते हुए सायण लिखते हैं 'यावदङ्गीनम्' इत्यृचा कृष्ण मृगचर्म मणिं संपात्य अभिमन्त्र्य कृष्णमृगवालेन बध्नीयात्

---

[२३] अथर्ववेद – १९.४६.१

[२४] अथर्ववेद – १९.४६.३

[२५] स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक, अथर्ववेदीयमंत्रविद्या, दयानन्द संस्थान – नईदिल्ली, पृ० ७९

[२६] अथर्ववेद – १९.४६.५ पर सायण भाष्य

[२७] अथर्ववेद – १९.४६ पर सायण कृत विनियोग

[२८] अथर्ववेद – ६.७२.३

तथा समर्थन में यावदङ्गीनमित्यसित स्कन्धमसितवालेन (कौ सू० ४०/१७) को उद्धृत करते हैं।[२९] कौशिक सूत्र के पद्धतिकार केशव ने भी इसका समर्थन किया है।

गोचर्ममणि भी जैविक मणियों में एक है। लाल रंग के गो-बैल पशु के मृत चर्म में छेद कर उसमे धागा डालकर हृदय तथा कामला रोगी को रोग नाश के लिए पहनाया जाता है। अथर्ववेद में कहा गया है ....'गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि' (अथर्व १/२२/१) अन्यत्र 'या रोहिणी देवत्या३ गावो या उत रोहिणीः' (अथर्व १/२२/३) इन मंत्रों के आधार पर सायण ने हृदय व कामला आदि रोगों की चिकित्सा के लिए रक्त गोचर्ममणि बन्धन में इस सूक्त का विनियोग किया है तथा समर्थन में कौशिक सूत्र (२६/१६) को उद्धृत किया है।[३०] जब कि पद्धतिकार केशव गोचर्ममणि का स्वरूप बताते हुए लिखते है। अनुसूर्यमिति सूक्तेन....वृषभ हृदय लोमभिःसुवर्ण वेष्टितं मणिं कृत्वा संपात्याभिमंत्र्य व्याधितम् बध्नाति।[३१]

लोममणि हाथी के लोम या मेष के नाभि अथवा वृषभ के हृदय लोमों को सुवर्ण तथा लाख आदि में लपेट कर उसे मणि या ताबीज का स्वरूप प्रदान कर बल और वर्चस् की वृद्धि करने अथवा हृदय व कामला रोगों के नाश के लिए प्रयोग किया जाता था। कौशिकसूत्र के पद्धतिकार केशव ने 'हस्तिलोमानि लाक्षाहिरण्येन वेष्टयित्वा बध्नाति ...... सूक्ताभ्यां मेषनाभिरोम मणि लाक्षाहिरण्येन वेष्टयित्वा बध्नाति' [३२] लिख कर रोम मणि का विधान किया है। सायण ने भी सिंहेव्याघ्र० व यषो हविः० (अथर्व ६/३८ व ३९) इति तृचाभ्यां वर्चस्कामास्नातकसिंहव्याघ्रादीनां सूत्रोक्तानां सप्तानाम् अन्यतमस्य नाभि लोममणिं लाक्षाहिरण्याभ्यां वेष्टयित्वा संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात्। लिखकर लोममणि बन्धन के प्रयोग का निर्देश किया है।[३३] आचार्य केशव देव शास्त्री भी वर्चस्कामी ब्राह्मण को सिंहेव्याघ्रादि० (अथर्व ६/३८व३९) मन्त्रोक्त में से किसी की भी नाभि के बालों को लाख में लपेट अभिमंत्रित कर बाँधने का विधान स्वीकार करते हैं।

शङ्खमणि - अथर्ववेदोक्त जैविक मणियों में एक है। यहाँ शङ्खमणि से तात्पर्य शङ्ख में उत्पन्न होने वाला मोती है। एक मन्त्र में कहा गया है कि "**वाताज्जातो अन्तरिक्षाद् विद्युतो ज्योतिषस्परि।**

---

[२९] अथर्ववेद – ६.७२ सायणकृत विनियोग

[३०] अथर्ववेद – १.२२ सायणकृत विनियोग

[३१] कौशिकसूत्र २.२१ पर केशवकृत पद्धति

[३२] कौशिकसूत्र १३ पर केशवकृत पद्धति पृ० ३१४

[३३] अथर्ववेद ६.३८ व ३९ पर सायणकृत विनियोग

स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः' ।[३४] अर्थात् वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत् तथा प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न सुनहले रँग वाला शङ्खमणि हमें पाप से बचावे। इससे शङ्खमणि की उत्पत्ति पर भी प्रकाश पड़ता है। जब अन्तरिक्ष में बादल गर्जना कर रहे हों तथा दूसरी ओर सूर्य भी चमक रहा हो ऐसे समय में मेघ से निकल कर शङ्ख के मुख में गयी हुयी पानी की बूँद मोती बन जाती है। कौटिल्य ने मणिसंग्रहप्रकरण में सीप के अतिरिक्त शङ्ख से भी मोती की उत्पत्ति बतायी है।[३५] शङ्ख का मोती अत्यन्त चमकीला होता है।[३६] अथर्ववेद में इसे स्पष्ट-रूप से मणि कहा गया है।[३७] मोती की ही गणना मणियों में होती है, शङ्ख या सीपी की नहीं। इस शङ्खजन्य मोती से प्रार्थना है कि रोगों का नाश करे। अथर्ववेद का मन्त्र कहता है- 'शङ्खेनामीवाममतिं शङ्खेनोत सदान्वाः शङ्खो नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः। अन्यत्र - 'शङ्खेन हत्वा रक्षांस्यत्त्रिणो वि षहामहे।[३८] अर्थात् विविध रोगों, यथा अमति (मतिविभ्रम), मानसिक उन्माद व सभी पीडाओं का नाशक, समस्त भेषज धर्म वाला यह शङ्खमणि हमारी रक्षा करे। इस शङ्खमणि द्वारा हम राक्षसों और पिशाचों को मारकर उन्हें पराभूत करते हैं। पुनश्च 'तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु'[३९] अर्थात् उस शङ्खमणि को दीर्घायुष्य, तेज, बल तथा सौ वर्षों के दीर्घ जीवन के लिये तेरे शरीर पर बाँधता हूँ,यह मणि सब प्रकार से तेरी रक्षा करे। आचार्य सायण ने भी इस मन्त्र का विनियोग शङ्खमणि धारण करने में किया है।[४०]

हरिणश्रृंगमणि हृदय रोग व क्षेत्रिय व्याधियों के नाश के लिए हरिणश्रृंगमणि का प्रयोग विहित है। अथर्ववेद में कहा गया है 'हरिणस्य रघुष्यदोऽधि शीर्षणि भेषजम्। स क्षेत्रियं विषाणया विषूचीनमनीनशत्' ।[४१] अर्थात् वेग से दौड़ने वाले हरिण के सींग में उत्तम औषध है। उस सींग से क्षेत्रिय रोग दूर होते है। कौशिकसूत्र (२७/२९) के आधार पर सायण ने क्षेत्रिय व्याधि भैषज्ये हरिणश्रृंगमणेर्बन्धनम्। तच्छृंग सहित उदक पानम् .....आदि लिखकर क्षेत्रिय व्याधि नाश के लिए

---

[३४] अथर्ववेद – ४/१०/१

[३५] Shankhah shukti prakirnakam cha yanayah (Kautilya, Arth Sastra, Chap. 28)

[३६] अथर्ववेद ४.१०.२ तथा च Shamkhasyaachyuta haarino jalanidhau ye vanshaja kambukasteshwantah kila maukitakam bhavati vai tocchukra toraa nibham,. (Shaligram-nighantu)

[३७] अथर्ववेद - ४.१०.४ व ५

[३८] अथर्ववेद – ४.१०.३ एवं २

[३९] अथर्ववेद – ४.१०.७

[४०] अथर्ववेद – ४.१०.७ पर सायणभाष्य

[४१] अथर्ववेद – ३.७.१

इस सूक्त (अथर्व ३/७) का विनियोग किया है। कौशिक सूत्र के पद्धतिकार केशव ने भी हरिणस्येति सूक्तेन हरिणश्रृंग मणिं..... बध्नाति लिखा है।[४२] आचार्य केशव देवशास्त्री के अनुसार यह मणि काले बारहसिंगा मृग विशेष का सींग है जो मणि रूप में प्रयोग किया जाता है।[४३] आयुर्वेद में भी बारहसिंगा मृग के श्रृंग से बनी औषधि का हृदय तथा आनुवांशिक रोगों में प्रयोग किया जाता है।

हस्तिदन्त मणि हाथी दांत की मणि बल और वर्चस्-तेज प्राप्त कराने वाली होती है। अथर्ववेद में हाथी दांत की मणि धारण करने से वर्चस्वी होने की प्रार्थना की गई है।[४४] सायण ने भी हस्तिवर्चम् इति द्वितीय सूक्तेन तेजस्कामो हस्तिदंतस्पृष्ट्वा उपतिष्ठते तथा हस्तिदन्त मणिम् अनेन संपात्य अभिमन्त्र बध्नीयात् लिखकर हाथीदांत की मणि बांधनें में इसका विनियोग किया है और समर्थन में हस्तिवर्चमिति हस्तिनम्। हस्ति दन्तं बध्नाति (कौ० सू० १३/१-२)उद्धृत किया है।[४५] शान्तिकल्प भी ब्राह्मीमहाशान्ति में हस्तिदन्तमणि बन्धन में इस सूक्त का विनियोग करता है।[४६]

वानस्पत्य मणियाँ वे हैं जो वनस्पतियों से प्राप्त होती है। विभिन्न वनस्पतियों के तने, जड़ आदि को आवश्यकतानुसार काटकर छोटे छोटे खण्डों के रूप में यथा- तुलसी, (लाल या सफेद) चन्दन आदि के छोटे-छोटे खण्डों अथवा रूद्राक्ष या वैजयन्ती आदि के दानों(फलों) को मणियों के रूप में प्रयोग किया जाता है।

अर्कमणि यह मणि एक शाखा वाले श्वेतार्क की जड से बनाने तथा उसे अभिमन्त्रित कर अर्क सूत्र से बांधने का विधान किया गया है। सायणाचार्य लिखते हैं 'यथासितः'इति तृचेन वाजीकरण कामः एकशाखार्कमणि सम्पात्य अभिमन्त्र्य अर्कसूत्रेण बध्नीयात्' ।[४७] यह मणि पौरुष प्रदान करने वाली है, जो पुरुषेन्द्रिय का विकास करने के लिये प्रयुक्त होती है। अथर्ववेद में कहा गया है '.....एवा ते शेपः सहसायमर्कोऽङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु।[४८] अर्थात् इस प्रकार तेरे पुरुषेन्द्रिय को बल के साथ एक अवयव से दूसरे अवयव के बराबर होने के समान यह अर्क पुष्ट करे। आगे कहा

---

[४२] कौशिक सूत्र २७.२९ पर केष कृत पद्धति

[४३] आचार्य केशव देवशास्त्री, अथव संहिता विधान, श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रिय संस्कृत विद्यापीठ नईदिल्ली-१६, १८८-८९, पृ० ४०

[४४] अथर्ववेद – ३.२२

[४५] उपर्युक्त पर सायण भाष्य

[४६] शान्तिकल्प १९.२

[४७] अथर्ववेद ६.७२ पर सायण कृत विनियोग तथा आचार्य केशव देवशास्त्री, अथव संहिता विधान पृ०७९

[४८] अथर्ववेद – ६.७२.१

गया है कि पारस्वतमृग, हाथी, गर्दभ तथा अश्व के समान तेरा शक्तिशाली पुरुषांग बढ़ जावे।[४९] आयुर्वेद में भी श्वेतार्क को स्नायु तंत्र का उत्तेजक (जेपउनसंदज) एवं स्तम्भन कारक माना जाता है। यह कटु पौष्टिक है । इससे शरीर के समस्त अवयव उत्तेजित होते है और शरीर का बल बढ़ता है और यह विषघ्न है।[५०]

अरूलमणि अरूल मणि भी वानस्पतिक मणि है। अरुल वृक्ष की मणि भूरे रंग के सूत्र में बांध कर शरीर में धारण करने से विविध प्रकार के विघ्नों का नाश होता है। यह मणि सब प्रकार से शरीर की रक्षा करने वाली तथा शोषक, बन्धक एवं विष्कन्धादि सैकड़ों रोगों का नाश करने वाली बताई गई है। अथर्ववेद में कहा गया है पिशङ्गे सूत्रे खृगलं तदाबध्नन्ति वेधसः। श्रवस्युं शुष्मं काबवं वघ्रिं कृण्वन्तु बन्धुरं' ।।[५१] आचार्य केशव देव शास्त्री ने अरुलमणि के धारण से शपथ, शाप, ताप, माया, स्पर्धा, छल, आदि के नाश के साथ ही वात-पित्त जन्य, दोषों का षमन तथा बलवीर्य का वर्धन होना स्वीकार किया है॥[५२]

अश्वत्थमणि अश्वत्थ की उत्तर, पूर्व की (अग्नि) दाड़ी-हवाई जड या ऊपर की षुंग (कलिका) तथा अश्वत्थ (पीपल) के बन्दा को मणि के रूप में प्रयोग किया जाता है। पीपल की दाडीं का पुमान संतति प्राप्त करने हेतु प्रयोग विहित है। अथर्ववेद में कहा गया है 'शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसुवनं कृतम्।तद् वै पुत्रस्यवेदनं तत् स्त्रीष्वाभरामसि'॥[५३] इसका विनियोग करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं 'शमीमश्वत्थ इति प्रथमं सूक्तं .....तथा तस्मिन्नेव कर्मणि (पुंसवन कर्मणि) तथाविधमेवाग्निं कृष्णोर्णया वेष्टयित्वा अनेन तृचेन संपात्य अभिमन्त्र्य स्त्रिया बध्नीयात्'।[५४] कौशिक सूत्र में इसका विनियोग पुंसवन हेतु करते हुए कहा गया है 'शमीमश्वत्थ इति मन्त्रोक्ते अग्निं मथित्वा पुंस्या (पुंष्याः) सर्पिषि पैद्वमिव मधुमन्थे पाययति । कृष्णोर्णाभि परिवेष्ट्य बध्नाति'। आचार्य केशव देव शास्त्री ने पुंसवन कर्म में सेमर या अन्य वृक्ष में उत्पन्न अश्वत्थ की उत्तर पूर्व की (अग्नि) दाड़ी या ऊपर की षुंग को मधु के साथ पीस कर अभिमन्त्रित कर स्त्री को पिलाने तथा इसकी दाड़ी या षुंग

---

[४९] अथर्ववेद – ६.७२.२ व ३ तथा इस पर सायण भाष्य

[५०] डॉ० प्रियव्रत शर्मा, द्रव्यगुण विज्ञान 'अर्क' – सत्मीकरण – चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी, १९५६, पृ० ३५४

[५१] अथर्ववेद – ३.९.३ तथा ५ व ६ भी दृष्टव्य है ।

[५२] आचार्य केशव देवशास्त्री, अथर्व संहिता विधान पृ० ४१ (उपर्युक्त)

[५३] अथर्ववेद – ६.११.१

[५४] अथर्ववेद ६.११ पर सायण कृत विनियोग

को काली ऊन से लपेटकर स्त्री की दायीं भुजा में बाँधने का निर्देश किया है।[५५] यह अश्वत्थ मणि अभिचार कर्म में भी रक्षा करने वाली वर्णित है। खदिर (खैर) में उत्पन्न अश्वत्थ (पीपल बन्दा) मणि को अभिचार कर्म से अपनी रक्षा के लिए बाँधने का विधान है। पुमान् पुंसः परिजातोष्वत्थः खदिरादधि ०(अथर्व ३/६/१) मन्त्र के आधारपर सायण अभिचार कर्म में रक्षार्थ अश्वत्थ मणि बन्धन हेतु इस सूक्त का विनियोग करते हैं।[५६] आचार्य पं० केशव देव शास्त्री जी ने अभिचार कर्म में खदिर (खैर) के वृक्ष में उत्पन्न (प्राप्य) पुरुष वाची पीपल की मणि की प्राण प्रतिष्ठा पूर्वक अभिमंत्रित कर रक्षार्थ बांधने का विधान किया है।[५७]

औदुम्बरमणि यह मणि गूलर वृक्ष के उत्तर, पूर्व की शाखा के काष्ठ से बनाई जाती है । अथर्ववेद में इसे मणियों का अधिपति बताते हुए कहा गया है 'त्वं मणिनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान। त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः सत्वमस्मत्सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च'।[५८]

यह वृश्य एवं पुष्टि कारक और श्रीहीनता, दरिद्रता तथा क्षुधा रोग को मिटाने वाली तथा तेज, वर्चस्, धन, धान्य, प्रजा व विविध प्रकार की सम्पत्ति देने वाली वर्णित है।[५९] नक्षत्र कल्प में भी कौबेरी महाषन्ति के अन्तर्गत पुष्टि कामना से औदुम्बर मणि बांधने का विधान किया गया है।[६०]

करीरमणि करीर वृक्ष की जड़ से निर्मित मणि को कृमि चिकित्सा के लिए प्रयोग किया जाता है। अथर्ववेद भाष्य में आचार्य सायण विनियोग करते हुए लिखते हैं कृमि भैषज्य कर्मणि 'ओते मे द्यावा पृथिवीति' सूक्तेन करीर मूलम् संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात्।[६१] अथर्ववेदीय कौशिक गृह्य सूत्र में भी कहा गया है 'ओते मे इति करीर मूलं काण्डेनैकदेषम्'।[६२] केशव पद्धतिकार ने भी अथ कृमिभैषज्यमुच्यते।.....करीर मूलं संपात्याभिमन्त्र्य बध्नाति लिखकर इसका समर्थन किया है।

जंगिड मणि सायण ने इसे वाराणसी में प्रसिद्ध एक वृक्ष विशेष माना है तथा दूसरे स्थान पर उत्तर प्रदेश में प्रसिद्ध ओषधि विशेष कहा है। स्वामी ब्रह्म मुनि इसे सोमलता से समीकृत करते हैं। अथर्ववेद में जंगिड मणि का वर्णन करते हुए कहा गया है 'दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो

---

[५५] आचार्य केशव देवशास्त्री, अथर्व संहिता विधान पृ० ६८ (पूर्वोक्त)
[५६] अथर्ववेद ३/६ का सायण कृत विनियोग
[५७] आचार्य केशव देव शास्त्री, अथर्व संहिता विधान पृ० ४० (पूर्वोक्त)
[५८] अथर्ववेद – १९.३१.११
[५९] अथर्ववेद – १९.३१ तथा इसका सायण कृत विनियोग एवं भाष्य
[६०] नक्षत्र कल्प - १९
[६१] अथर्ववेद – ५.२३ पर सायण कृत विनियोग
[६२] कौशिकसूत्र २९.२०

दक्षमाणाः सदैव। मणिं विष्कन्ध दूषणं जंगिडं विभृमो वयम'।[६३] अर्थात् हम हानि रहित रहते हुए उन्नति शील दीर्घ जीवन तथा महान रमणीय कर्मो के लिए विश्कन्ध नामक रोग को नष्ट करने वाली जंगिड मणि को धारण करते हैं। आगे जंगिड मणि विश्कन्ध-शोषक रोग, जम्भरोग (जिसमें पर्व पर्व में टूटन होती है), तथा शोकादि विविध रोगों से रक्षा करने वाली, कृत्या व पिशाचादि को दूर करने वाली, अभिचारजन्य कृत्रिम ध्वनियों, मुखादि सप्त छिद्रों से अचानक होने वाले रक्त प्रवाह रूप रोगों की नाशक, सम्पूर्ण व्याधियों तथा राक्षसों का नाश करने वाली[६४] आषरीक, विषरीक, बलास, पीठ के रोग, तक्मन तथा शरद् ऋतु में होने वाले रोगों की नाशक एवं विश्वभेषज बतायी गयी है।[६५] एक मन्त्र में जंगिड और शण का एक साथ उल्लेख हुआ है शणश्च मा जंगिडश्च विष्कन्धादभि रक्षताम्। आरण्यादन्य आभृतः कृष्या अन्यो रसेभ्यः।[६६] अर्थात् शण का सूत्र और जंगिड मणि दोनों मुझे विष्कन्ध (शोषक) रोग से सब प्रकार बचावें। इसमें से एक जंगिड तो वन से लायी गयी है तथा शण ओषधियों के सार रूप रेशों से बनाया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि जंगिड मणि सन के रेशों से बनाये धागे में बांध कर प्रयोग की जाती थी।

दर्भमणि को शतकाण्ड अर्थात् अनेक पर्व वाली, किसी के द्वारा पराजित न होने वाली, अनेक पत्रों वाली उग्र औषधि कहा गया है। यह आयु को बढाने वाली, तेजस्विता देने वाली ओषधि है जो सब ओर से रक्षा करती है।[६७] सायण ने ' पाटामूलम् अपरा जितायाम् शतकाण्डो दुष्च्यवनः इति दर्भ मणिं याम्याम् '(शान्ति कल्प १९/६) को उद्धृत करते हुए ' विहितामयम् याम्याख्यायां महाशन्तौ दर्भमणि बन्धनं कुर्यात् '[६८] लिखा है तथा अथर्ववेद भाष्य में भी स्थान स्थान पर ' हे शतकाण्डाख्य ओषधे लिखा है।[६९] वैदिक विद्वान् स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक ने 'दर्भ' से यहां 'अभ्रक' का आशय ग्रहण किया है।[७०] परन्तु यहाँ 'दर्भ' अभ्रक की अपेक्षा वनस्पति- औषधि ही अधिक उचित प्रतीत होता है। क्योंकि दर्भ का यज्ञीय वानस्पतिक औषधियों में परिगणन करते हुए

---

[६३] अथर्ववेद – २.४.१
[६४] अथर्ववेद – २.४.२, ३ व ६ तथा १९.३४.२, ३.४ व ७
[६५] अथर्ववेद – १९.३४.१०
[६६] अथर्ववेद – २.४.५
[६७] अथर्ववेद – १९/२८.३२ व ३३ वाँ सूक्त
[६८] उपर्युक्त पर सायण कृत विनियोग
[६९] अथर्ववेद १९.३२ पर सायण् भाष्य
[७०] स्वामी ब्रह्ममूनि परिव्राजक अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या पृ० १३०-१३१

इसे वीरुध कहा गया है 'अश्वत्थो दर्भो वीरुधां सोमो राजामृतं हविः। व्रीहिर्यवश्च भेषजौ दिवस्पुत्रावमर्त्यौ '।। और दर्भ का अघ्वर (यज्ञ) में उपयोग निर्दिष्ट है।[७१]

पर्णमणि देवताओं का ओज तथा ओषधियों का सार एवं बल वर्धक वर्णित की गयी है। यह दीर्घायु तथा वर्चस्व प्रदान करती है।[७२] सायण ने पर्ण से पलाश का ग्रहण करते हुए:- पर्णः पलाशवृक्षःसोमपर्णोद्भूतत्वात (योयं पर्णः सोमपर्णाद्धि जातः तै० ब्रा० १/२/१/६) लिखा है।[७३] जब कि स्वामी ब्रह्म मुनि परिव्राजक यहां सोमलता के पत्तों से पर्ण मणि का आशय ग्रहण करते है।[७४]

पाटामणि पाटा की जड़ बुद्धि तथा वाक्षक्ति को अभिवृद्धि करने वाली बताई गई है। पाटा की जड़ को अभिमंत्रित कर बाँधने से वाद-विवाद में विजय होती है। पाटामिन्द्रो व्याऽश्नादसुरेभ्यस्तरीतवे।प्राशं प्रति प्राषो जह्यरसान् कृण्वोषधे।[७५] सायण ने 'पाठामूलम संपात्य अनेन अभिमन्त्र्य बध्नीयात्' लिखकर पाटा (मूल) मणि बांधन में इस सूक्त का विनियोग किया है।७६ कौशिक सूत्र ने भी पाटाकी जड़ तथा पाटा के सात पत्तों की माला धारण करने का निर्देश किया है।[७७]

यवमणि वैदिक या लौकिक पुरुष के आक्रोश अथवा ब्राह्मणादि के शाप, कुदृष्टि जन्य दोष व पिशाच तथा यक्षादि से उत्पन्न भय व क्लेशे निवारणार्थ यवमणि का प्रयोग किया जाता है। 'अघद्विष्टा देवजाता वीरुच्छपथयोपनी' के आधार पर सायण ने यहां वीरुत् शब्द का अर्थ 'दूर्वा यवो वा' मानकर यहां यवमणि का प्रयोग माना है और तदनुसार ही इस सूक्त का विनियोग किया है।[७८] आचार्य केशव देव शास्त्री ने यव मणि को इन्द्रजौ निर्मित मणि माना है।[७९]

---

[७१] अथर्ववेद – ८.७.२० तथा १९.३३ भी दृष्टव्य है
[७२] अथर्ववेद – ३/५/१,३,४ व ८
[७३] अथर्ववेद – ३/५/१ व ४ पर सायण भाष्य
[७४] स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या पृ० १००
[७५] अथर्ववेद – २.२७.४
[७६] उपर्युक्त पर सायण कृत विनियोग
[७७] 'नेच्छत्रुरिति पाटा मूलम् प्रतिप्राशितम् अन्वाह बध्नाति । मालां सप्तपलाषीं धारयति । कौशिकसूत्र ३८/१८-२१
[७८] अथर्ववेद २.७.१, २ व ५ पर सायण भाष्य व सायण कृत विनियोग ।
[७९] आचार्य केशव देव शास्त्री, अथर्व संहिता विधान पृ० ३३ (पूर्वोक्त) ।

वरणमणि भी एक वानस्पतिक मणि है, जो गले में धारण की जाती है। अथर्ववेद में कहा गया है 'अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः' ।[८०] अर्थात् यह दिव्य गुणों वाला वानस्पतिक वरण मणि मेरे वक्ष स्थल पर सुशोभित है। सायण ने इसे वरण वृक्ष के काष्ठ से निर्मित माना है।[८१] वरणमणि राजयक्ष्मा, अभिचार, कृत्या एवं श्री हीनता आदि का नाश करती है और दुःस्वप्न, अपशकुन तथा माता-पिता व भ्रातादि द्वारा किए हुए पापों के दुष्परिणाम प्राप्त होने से रोकती है।[८२] यह मणि आयु, ओज, ऐश्वर्य एवं यश प्रदान करती है।[८३] सायण ने इसका विनियोग करते हुए लिखा है 'वरणो वारयातै इति तृचेन राजयक्ष्मादि रोग भैषज्य कर्मणि वरण मणिं संपात्य अभिमन्त्र्य पुनस्तृचं जपित्वा बध्नीयात्।[८४] इस प्रकार वरणमणि का रोगोपचारार्थ प्रयोग ज्ञात होता है।

शतवारमणि यद्यपि अथर्ववेद में शतवार नाम से किसी वनस्पति का उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु शतवार मणि राक्षसों, दुर्नाम गुह्य रोगों, गन्धर्व एवं अप्सराओं द्वारा उत्पन्न रोगों को नष्ट करने वाली तथा सौ पुत्रों को देने वाली वर्णित है।[८५] अथर्ववेद में कहा गया है 'शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्। शतं शश्वन्वतीनां षतवारेण वारये'[८६] अर्थात् मै इस शतवारमणि के द्वारा सैकड़ों व्याधियों तथा गन्धर्व और अप्सराओं द्वारा उत्पन्न सैकड़ों दुष्प्रभावों-रोगों का नाश करता हूँ। आचार्य सायण 'शतवार' की व्याख्या करते हुये लिखते हैं - शतवारः शतं वारा मूलानि शूका वा यस्य स शतवारः। यद्वा शत संख्याकान् रोगान् निवारयतीति शतवारः..... उत्तरत्र शत संख्याकरोगवारणश्रवणाद् औषधि विशेषः तदात्मकोमणिः।[८७] परन्तु आचार्य सायण यहाँ इस ओषधि की स्पष्ट पहचान तथा नामोल्लेख नहीं बतातें हैं।परन्तु वैदिक विद्वान स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक ने 'हिरण्य श्रंग ऋषभः शतवारो अयं मणिः' के आधार पर इसे ऋषभक औषधि माना है तथा समर्थन में ऋषभो गोपति र्धीरा विषाणी वृषः ककुदमान पुंगवो वोढा षृंगी धुयषर्च भूपतिः (राज निघण्टु) को उद्धृत किया है।[८८] किन्तु आचार्य केशव देव शास्त्री इसे शतावर नाम की औषधि से

---

[८०] अथर्ववेद – १०.३.११
[८१] अथर्ववेद – ६.८५.१ पर सायण भाष्य
[८२] अथर्ववेद – १०.३.४ - ८
[८३] अथर्ववेद – १०.३.१२ व १७-२५
[८४] अथर्ववेद – ६.८५ तथा १०.३ सायण कृत विनियोग
[८५] अथर्ववेद – १९.३६
[८६] अथर्ववेद – १९.३६.६
[८७] अथर्ववेद – १९.३६.१ पर सायण भाष्य
[८८] स्वामी ब्रह्ममूनि परिव्राजक अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या पृ० १०५-१०६

समीकृत करते हुए लिखते हैं - 'भुजा में शतावर मणि धारण करें। शतावर के अग्रभाग से राक्षस जड़ से यातुधान तथा मध्य भाग से यक्ष्म, त्वचा के रोग, उल्टे फोड़े, नाक, कान, नेत्र, कर्णपुटि, जंघाओं के अन्तर्वर्ति (रांग) तथा गुदा के भगन्दर बवासीर आदि रोगों का निवारण होता है। इससे मृगी (अपस्मार तथा हिस्टीरिया) का भी षमन होता है'।[८९] वस्तुतः इसका वास्तविक स्वरूप क्या है यह प्रयोग और अनुभव का विषय है ।

शाकलमणि एक बहुवानस्पतिक मणि है। जो पाप तथा तज्जन्यरोगों, विष, बलास, राक्षसों, कृत्याओं यम की बेडियों (अपमत्युओ) तथा देव सम्बन्धी पापों का नाश करने वाली और जीवन देने वाली वर्णित है।[९०] यह मणि पलाशादि दश शान्त वृक्षों के छोटे छोटे टुकड़ों को लाख और सुवर्ण से मण्डित कर इस बनायी जाती है। आचार्य सायण अथर्ववेद (६/३८ व ३९) के विनियोग में वर्चस् प्राप्ति के लिए इस मणि का वर्णन करते हुए लिखते हैं 'तथा आभ्यामेव तृचाभ्यां पलाशादि दशशान्त वृक्षषकलनिर्मित मणिं लाक्षाहिरण्यवेष्टितं सम्पात्य अभिमन्त्र्य वर्चस्कामो बध्नीयात्'। तथा समर्थन में कौशिक सूत्र २/४ को उद्धृत करते हैं। अन्यत्र भी सायण ने इसी प्रकार का विधान करते हुए लिखा है-यक्ष्मादि सर्वव्याधि भैषज्ये कर्मणि 'या बभ्रवः' इत्यथर्व (८/७) सूक्तेन दशवृक्ष शकलानां लाक्षा हिरण्येन वेष्टितं मणिं कृत्वा संपात्य अभिमन्त्र्य पुनः सूक्तं जपित्वा बध्नाति। तदुक्तं कौशिकेन उत्तमेन शाकलम् इति (कौ.सू. ४/२) को सन्दर्भित किया है। कौशिक सूत्र के पद्धति कार केशव ने शान्त वृक्षों के नाम भी गिनाये हैं और उनमे से किन्हीं दस वृक्षो के टुकडो निर्मित मणि को शाकल मणि कहा है। केशव के अनुसार शान्त वृक्ष इस प्रकार हैं- 'पलाशः उदुम्बरः जम्बुः काम्पीलः स्रक् वङ्गः षिरीषः स्रक्तयः वरणः विल्बः जङ्गिडः कुटकी गृह्य गलावलः षिम्बलः,वेतसः, सिपुनः स्यन्दन अरणिका अष्मयोक्तःतुन्युः पूतदारुरिति शान्ता वृक्षाः। एतेषां कतमानामपिदशानां शकलैर्निमितः शाकलो मणिः'।[९१] जो इसकी पुष्टि करते हैं।

सर्षपकाण्डमणि नेत्र रोग नाशक मणि है जो सरसों के पौधे के तने के खण्डों से बनायी जाती है और उसको सरसों के तेल में वासित कर अभिमन्त्रित कर प्रयोग किया जाता है। अथर्ववेद ६/१६ का विनियोग करते हुए आचार्य सायण लिखते हैं 'आबयो अनाबयो इति चतुर्ऋचेन अक्षि रोग भैषज्ये सार्षप तैलेन संपातितं सर्षप काण्ड मणिम् अभिमन्त्र्य रोगार्तस्य बध्नीयात्'। कौशिक

---

[८९] आचार्य केशव देव शास्त्री, अथर्व संहिता विधान पृ० १३३ (पूर्वोक्त)

[९०] अथर्ववेद ८/७ पर श्रीपाद दामोदर सातवलेकर कृत भाष्य

[९१] अथर्ववेद ८/७ पर सायण कृत विनियोग एवं कौशिकसूत्र काण्डिका ८ पर केशवकृत पद्धति ।

सूत्र के पद्धति कार केशव ने भी इसका समर्थन किया है।[९२] आयुर्वेद में भी सर्षप को नेत्ररोग नाशक बताया गया है।[९३]

स्रात्त्यमणि को प्रतिसर मणि भी कहा गया है।[९४] सायण ने इसे तिलक वृक्ष से निर्मित तिलकमणि माना है।[९५] यह मणि कृत्याओं आदि का विनाश तथा गंधर्व एवं अप्सराओं से रक्षा एवं बल, तेज तथा उत्साह वर्धन करने वाली औषधि के रूप में वर्णित है।[९६] तीन रात्रियों तक दही और शहद में बसाई (भावित की) गई तिलकमणि को अयं प्रतिसरः० सूक्त से संपातित और अभिमन्त्रित कर बांधने का विधान मिलता है।[९७] आचार्य केशवदेव शास्त्री ने 'दूष्या दूषिरसीति स्रात्त्यं बध्नाति' (कौ०सू०३९/१) के आधार पर स्त्री, शूद्र, राजा, ब्राह्मण, अघोरी(कपालिक), अन्त्यज तथा शाकिनी आदि द्वारा किये गये अभिचार जन्य दोष से आत्म रक्षार्थ तथा कृत्यादि के निवारणार्थ इस सूक्त से तिलकमणि को अभिमन्त्रित कर बाँधनों का निर्देश किया है।[९८]

इन वानस्पतिक मणियों के अतिरिक्त कभी कभी कई वनस्पतियों अथवा औषधियों को मिलाकर कुछ कृत्रिम मणियां या करण्ड बनाने और कतिपय मणियों को दुग्ध अथवा दधि व शहद में भावित (भिगो) कर प्रयोग किये जाने के विधान भी अथर्ववेद में मिलते हैं।

वैयाघ्रमणि एक ऐसी कृत्रिम मणि है जो विविध जड़ी बूटियों के रस से बनाई जाती है। यह मणि विविध रोगाणुओं तथा राक्षसों का नाश करने वाली और अभिशाप आदि से रक्षा करने वाली वर्णित है। अथर्ववेद में कहा गया है 'वैयाघ्रो मणिर्वीरुधां त्रायमाणोऽभिषस्तिपाः।अमीवाः सर्वारक्षांस्यप हन्त्वधिं दूरमस्मत'॥[९९] इस मणि के प्रभाव से पशुओं तथा मनुष्यों का यक्ष्म रोग तुरन्त दूर भाग जाता है।[१००]

करण्ड एक प्रकार के रक्षाकंकण या ताबीज हैं जिनको अर्जुन की छाल, इन्द्र जौ, जौ का भूसा, तिल तथा तिलकुटा (फली) मिलाकर किसी ऊनी या सूती वस्त्र में अथवा खेत या बाँबी की

---

[९२] कौशिक सूत्र कण्डिका ३०/१-२ पर केषकृत पद्धति द्रष्टव्य है ।

[९३] 'कटुपाकमचक्षुष्यं स्निग्धोष्णं बहुपितम् । कृमिघ्नं सार्षपं तैलं काण्डूकुष्ठापहं लघु । सुश्रुतसंहिता सूत्र स्थान ४५

[९४] अथर्ववेद ८.५.१ व ४

[९५] उपर्युक्त पर सायण भाष्य

[९६] अथर्ववेद ८.५

[९७] अथर्ववेद ८.५ का सायण कृत विनियोग

[९८] आचार्य केशव देव शास्त्री, अथर्व संहिता विधान पृ० ३४ (पूर्वोक्त)

[९९] अथर्ववेद – ८.७.४ तथा स्वामी ब्रह्ममूनि परिव्राजक, अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या, पृ० १२८

[१००] अथर्ववेद – ८.५.१५

मिट्टी को किसी मृत पशु के चर्म में बांध कर बनाया जाता है। ये करण्ड या ताबीज कुलपरम्परा से आये हुए क्षेत्रीय (आनुवंशिक) रोगों का नाश करते हैं। अथर्ववेद में कहा गया है- बभ्रोरर्जुन काण्डस्य यवस्य ते पलाल्या तिलस्य तिलपिंजया। वीरुत् क्षेत्रिय नाशिन्यपक्षेत्रियमुच्छतु॥[१०१] सायण इस सूक्त का विनियोग करते हुए लिखते हैं- 'अर्जुनकाष्ठयववुसतिलपिञ्जिकाः एकीकृत्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात तथा च आकृति लोष्ठं वल्मीकमृत्तिकाम् वा जीव पशु चर्मणा आवेष्टय पूर्ववत् बध्नीयात्' तथा समर्थन में - बभ्रोरिति मन्त्रोक्तमाकृति लोष्ट वल्मीकौ परिलिख्य जीव कोषण्यामुत्सीव्य बध्नाति (कौ.सू. २६/४३) को उद्धृत करते हैं।[१०२] आचार्यकेशवदेव शास्त्री ने भी अपने ग्रन्थ **अथर्वसंहिताविधान** में इसका समर्थन किया है।[१०३]

परिहस्त एक प्रकार का कंकण है। जो विविध ओषधियों यथा पिंग,सर्षप आदि को पोटली में बांध कर अभिमंत्रित कर राक्षसादि से रक्षा के लिए गर्भिणी या प्रसूता को बांधा जाता है। अथर्ववेद कहता है-'परिहस्त विधारय योनिं गर्भाय धातवे। मर्यादे पुत्रमा धेहि तं त्वमा गमयागमे[१०४] अर्थात् हे कंकण योनिको गर्भ धारण के लिए सशक्त करो, हे स्त्री! तुम समय आने पर पुत्र उत्पन्न करो। पुत्र की कामना से अदिति ने परिहस्त धारण किया था।[१०५] सायण ने इस सूक्त का विनियोग गर्भाधान संस्कार में कंकण बांधने में किया है।[१०६] अन्यत्र अथर्ववेद में गर्भ घातक राक्षसों तथा पिशाचों का नाश करने वाली औषधियों में 'बज' और 'पिंग' का नाम आया है।[१०७] अथर्ववेद में ही अन्यत्र कहा गया है। 'परिसृष्टं धारयतु यद्धितं मावपादि तत्। गर्भं त उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीवी भार्यौ॥[१०८] अर्थात् यज्ञ से अवशिष्ट श्वेत सर्षप को गर्भिणी स्त्री धारण करे जिससे गर्भपात न हो। नीवी-नाडे की गांठ में धारण करने योग्य ये दोनों उग्र औषधियाँ तेरे गर्भ की रक्षा करें। इसीलिए सायण ने कौशिक सूत्र ३५/२० के आधार पर सीमन्तोन्नयन कर्म में श्वेत व पीत सर्षप मिलाकर गर्भिणी को बांधने का

---

[१०१] अथर्ववेद – २.८.३

[१०२] अथर्ववेद – २.८ का सायण कृत विनियोग

[१०३] आचार्य केशव देव शास्त्री, अथर्व संहिता विधान पृ० ३३ (पूर्वोक्त)

[१०४] अथर्ववेद – ६.८१.२

[१०५] अथर्ववेद – ६.८१.३

[१०६] यन्तासि इति तृचेन गर्भाधाने कंकणादिकं सम्पात्य अभिमन्त्र्य स्त्रिया हस्ते बध्नीयात् ।
यन्तासीतिमन्त्रोक्तं बध्नाति (कौ०सू० ४/११) अथर्ववेद ६/८१ पर सायण कृत विनियोग ॥

[१०७] अथर्ववेद ८.६.३, ६ व ७

[१०८] अथर्ववेद – ८.६.२०

विधान किया है।[१०९] आचार्य चरक ने भी वचा, कुष्ठ क्षौमिक, हिंगु, सर्षपाष्तसी, लषुन कण, कणिकानां रक्षोघ्न समाख्यातानाञ्च औषधीनां पोट्टलिकां कृत्वा तथा सूतिकायाः, कण्ठे स पुत्रायाः स्थाल्युदककुम्भ पर्यङ्केष्वपि तथैव द्वार पक्षयोः बध्यनीयात् लिखकर इसका समर्थन किया है।[११०]

आज भी भारत के जनसामान्य विशेषकर ग्राम्य अंचलो में यह प्रथा विद्यमान है। विवाह, यज्ञोपवीत व सूतिका आदि में रक्षार्थ तथा अनेक रोगों के निवारणार्थ इस प्रकार के रक्षा कंकण या रक्षा करण्ड बांधे जाते हैं।

इसी प्रकार धनुर्ज्या अर्थात् धनुष की ज्या (डोरी) कोई मणि विशेष नहीं है, किन्तु अभिमन्त्रित रक्षासूत्र की भॉति अवश्य है जिसे गर्भ दृढकरणकर्म तथा जम्भगृहीत (जमूला पकडने) की चिकित्सा हेतु त्रिबट अर्थात् तिहरा कर बाँधा जाता था। अथर्व० ६/१७ का विनियोग करते हुए सायण लिखते हैं 'यथेयं पृथिवी मही' इति तृचेन गर्भ दृंहण कर्मणि धनुर्ज्यां त्रिरुद्ग्रथ्य बध्नीयात्। तथा कौशिक सूत्र का भी कथन है 'जम्भ ग्रहणेपि तच्छान्तार्थम् अनेन तृचेन धनुर्ज्या बन्धानादीनि कर्मणि कुर्यात'।[१११] यह विषय प्रयोग एवं अनुभव की अपेक्षा रखता है।

आयुर्वेद में विविध मणियों को उपचारार्थ धारण करने का अनेक स्थानों पर समर्थन किया गया है। सुश्रुत ने मुक्ता विद्रुमवज्रेन्द्र वैडूर्य स्फटिकादयः चक्षुष्या मणयः षीता लेखना विष सूदनाः पवित्रा धारणीया च पापमालक्ष्मी मलापहाः लिखा है।[११२] आचार्य चरक का भी कथन है धार्यमणिर्या च वरोषध्यो विषापहाः। तथा च मणयष्च धारणीयाः मणीनामौषधीनाम् च मंगल्यानां विषस्य च धारणादगद्वाञ्च सेवनान्न भवेत् ज्वरः'[११३] जिससे मणियों तथा परिहस्त आदि द्वारा व्याधियों का उपचार किया जाना सिद्ध होता है। इसी के आधार पर भारतीय ज्योतिष में रत्न चिकित्सा तथा तन्त्र मे विविध धातुओं तथा औषधियों की मणियाँ एवं रूद्राक्षादि धारण करने का प्रचलन है।

डॉ. कैलाशनाथ तिवारी
पूर्व प्राचार्य
श्रीमती लाडदेवी शर्मा पंचोली संस्कृत महाविद्यालय
बरुन्दनी, भीलवाड़ा (राजस्थान)

[१०९] अथर्ववेद – ८.६ सायण कृत विनियोग
[११०] चरक शरीर स्थान ८.१०१
[१११] कौशिक सूत्र काण्डिका ३५.१२-१३
[११२] सुश्रुत सूत्र ४६.१८ सुवर्णादि वर्ग
[११३] चरक विष चिकित्सा २३.२५२, २५३ शरीर स्था० ८.९४ तथा चिकित्सा ३.३०९